22

संप्रदायवाद, जाति और आरक्षण

प्रजातंत्र में, यह साधारण सी बात है कि लोग आपसी सौहार्द कायम करने तथा राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए विविध हथकंडे (तरीके) अपनाते हैं। भारत जैसे देश में राजनीति, सम्प्रदायवाद और जातिवाद से प्रभावित रही है। हमारे देश में सामाजिक असमानताएँ और विसंगतियाँ अनेक जातिगत और धर्मगत समूहों के रूप में देखी जा सकती हैं। उनके बीच परस्पर अविश्वास, आर्थिक अभाव, अपहरण और सामाजिक भेदभाव के कारण लंबे समय से तनाव चले आ रहे हैं। इन समूहों द्वारा एक-दूसरे के विरुद्ध छींटाकशी करने और उपरोक्त कारकों के कारण राजनीति में संप्रदायवाद और जातिवाद का वर्चस्व बढ़ा है। इस चलन के कारण न केवल चुनाव के समय राजनीतिक प्रक्रिया प्रभावित होती है, बल्कि इससे अच्छे प्रशासन, आर्थिक विकास और सामाजिक सामंजस्य के लिए भी गंभीर खतरा पैदा होता है। पिछड़ी जातियों एवं निचले तबकों के उत्थान के लिए आरक्षण का विधान किया गया है। इस पाठ में हम जाति और धार्मिक पहचान, इसके महत्व और भारतीय राजनीतिक तंत्र पर इसके प्रभावों को समझ सकेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

- संप्रदायवाद के अर्थ की व्याख्या कर सकेंगे;
- भारतीय राजनीति में संप्रदायवाद के प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे;
- सांप्रदायिक हिंसा के पीछे अनेक कारकों की व्याख्या कर सकेंगे;
- समाज में जाति की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे;
- भारतीय चुनाव प्रणाली में जातिवाद के प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।
- आरक्षण नीति के लागू करने के पीछे तर्कों की व्याख्या कर सकेंगे;
- आरक्षण से संबदध विविध संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या कर सकेंगे;
- महिला आरक्षण के महत्व को समझ सकेंगे; तथा
- चुनावी राजनीति के परिप्रेक्ष्य में आरक्षण नीति की समीक्षा कर सकेंगे।

टिप्पणी

22.1 संप्रदायवाद का अर्थ

भारत विविध विश्वासों और धर्मों का देश है। जिससे यहां प्राय: हिंसा होती है और लोगों के बीच द्वेष पैदा होता है। जो लोग धार्मिक हिंसा में विश्वास करते हैं, वे धर्म को नैतिकता के रूप में नहीं लेते बल्कि वे धर्म को अपनी राजनीतिक महात्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए एक हथियार की तरह प्रयोग करते हैं। संप्रदायवाद की नींव ही आपसी धार्मिक विद्वेष पर टिकी है, इसलिए यह धार्मिक हिंसा को उत्पन्न करता है। इससे सांप्रदायिक संगठन और धार्मिक संगठन के बीच का अंतर स्पष्ट होता है। संप्रदायवाद की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(क) यह अन्धविश्वास पर आधारित है।

(ख) यह विशुद्ध रूप से दृष्टिकोण पर निर्भर है। एक संप्रदायवादी अपने धर्म को दूसरों से श्रेष्ठ समझता है।

(ग) यह असहिष्णुता पर आधारित है।

(घ) यह दूसरे धर्मों के विरुद्ध दुष्प्रचार करता है।

(ङ) यह दूसरे धर्मों तथा उसके मूल्यों को समाप्त करने से प्रेरित होता है।

(च) यह दूसरों के विरुद्ध हिंसा सहित अतिवादी तरीकों को स्वीकार करता है।

22.2 संप्रदायवाद का प्रभाव

संप्रदायवाद ने लम्बे समय से हमारे समाज को बांट रखा है। इसके कारण कट्टरवादी सिद्धांतों में विश्वास, दूसरे धर्मों और धार्मिक समूहों के प्रति असहिष्णुता और घृणा, ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ना-मरोड़ना और सांप्रदायिक हिंसा पैदा होती है।

22.2.1 सांप्रदायिक हिंसा

1947 के पूर्व अधिकांश धार्मिक दंगे अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीति ''फूट डालो और राज करो'' के कारण हुए। लेकिन देश के बंटवारे के बाद दोनों ही समुदायों के, अभिजात्य वर्ग, इसके लिए जिम्मेदार हैं। आजाद भारत में सांप्रदायिक दंगे विविध कारणों से होने लगे। उनमें से कुछ सामान्य कारण हैं: प्रथम समाज का विभिन्न वर्गों में विभाजित होना, दूसरा देश की खराब आर्थिक दशा जिससे असमान आर्थिक विकास हुआ। परिणामत: कम विकसित समुदायों के उच्च वर्गों ने सीमित वृद्धि का भरपूर लाभ उठाया और इससे उन्हें राजनीतिक शक्ति भी प्राप्त हुई। आगे चलकर एक अंतराल के बाद इन अभिजात्य वर्गों में आपसी प्रतिद्वंद्व होने लगा। यही बात अन्य समुदायों में भी हुई। अपने समुदायों का समर्थन प्राप्त करने के लिए उनके नेताओं ने सांप्रदायिक भावना भड़काकर समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया। फलत: समाज के पारंपरिक विश्वास अभिजात्य वर्ग के लाभ हेतु प्रयोग होने लगे। जब सामान्य जन स्वयं को असुरक्षित समझता है, तो वह धर्म की ओर अभिमुख होता है, जो उसे साम्प्रदायिक भावनाएं भड़काकर राजनीति करने तथा कभी-कभी हिंसा की ओर अग्रसर होने का कारण होता है।

साम्प्रदायिक हिंसा में बढ़ोत्तरी हो रही है क्योंकि साम्प्रदायिक दल धार्मिक प्रचार के लिए आक्रामक रवैया अपनाते हैं। जिससे विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों के बीच वैमनस्य पैदा होता है। भारत में साम्प्रदायिक रुझान रखने वाले राजनीतिक दलों को साम्प्रदायिक भावनाएं भड़काकर साम्प्रदायिक हिंसा का दोषी माना जाना चाहिए। भारत की वे राजनीतिक पार्टियां जो सांप्रदायिक मार्ग अपनाती हैं, वे सांप्रदायिक भावनाएं भड़काने

के लिए दोषी करार दी जा सकती हैं। इन सामान्य कारकों के अतिरिक्त भारत में सांप्रदायिक हिंसा के लिए कुछ स्थानीय कारक भी जिम्मेदार होते हैं। प्रथम, तस्करों और अपराधी तत्वों की ताकत बढ़ने से विभिन्न समुदायों के व्यापारियों के बीच प्रतिद्वंद्व कभी-कभी हिंसा को जन्म देती है। बड़े शहरों में तस्करों और अपराधियों के शक्तिशाली होने से प्राय: ऐसी हिंसा होती रहती है। 1993 में बाबरी मस्जिद तोड़े जाने से भड़की सांप्रदायिक हिंसा इसका उदाहरण है। दूसरे, उन शहरों में सांप्रदायिक हिंसा प्राय: होती रहती है, जहां हिंसा होने का एक इतिहास है। इसमें अलीगढ़ और हैदराबाद के अलावा कुछ अन्य शहर भी हैं। अल्पसंख्यकों की अधिक संख्या से दोनों समुदायों के उच्च वर्ग में राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता बढ़ती है और वे प्राय: अपने समुदाय का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

सांप्रदायिक हिंसा का कारण जो भी हो, जब भी यह फैलती है तो पूरे देश का ध्यान तुरन्त अपनी ओर आकर्षित करती है। हमारे समाज में वर्ग पहचान जाति और संप्रदाय में बदल गई है। हमारे शासक वर्ग यहां की आर्थिक समस्याएं जैसे बेरोजगारी, गरीबी, महंगाई, जाति और साम्प्रदायिक समस्याओं में बदल देते हैं। लोगों को चाहिए कि वे इस प्रकार के बहकावे में न आएँ। लोगों की आर्थिक समस्याएं जैसे गरीबी और बेरोजगारी को निश्चित रूप से देश में सांप्रदायिक हिंसा के पूरी तरह समाप्त होने से पूर्व हल करना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 22.1

1. भारत में बढ़ते संप्रदायवाद का कारण है :-

   (क) अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति

   (ख) स्वतंत्रता आंदोलन

   (ग) भारत की धर्मनिरपेक्ष भावना

2. संप्रदायवाद की प्रमुख विशेषता .... और .... है।

3. .... और राजनीतिक वर्ग के बीच अंतर्संबंध सांप्रदायिक हिंसा को उत्पन्न करते हैं।

4. लोगों की समस्याएँ संप्रदायवाद के द्वारा दूर होती हैं।

   (सत्य/असत्य)

22.3 भारतीय समाज में जाति की भूमिका

किसी भी समाज का राजनीतिक ढांचा उस समाज की प्रकृति से प्रभावित होता है। समाज की प्रकृति को समझने के लिए हमें सामाजिक संरचना को समझना होगा। भारतीय सामाजिक संरचना को जाति प्रथा के रूप में अच्छी तरह से समझा जा सकता है, जहां जाति के अंतर्गत प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था सन्निहित है। कई वर्षो तक जातिव्यवस्था का विकास समाज में सामाजिक-आर्थिक असमानता को बनाए रखने के लिए होता रहा। यदि कोई व्यक्ति किसी छोटी जाति में उत्पन्न होता था तो उसे बड़ी जातियों द्वारा परेशान किया जाता था और उसे अन्य अनेक सुविधाओं से वंचित होना पड़ता था। दलितों की हालत बदतर थी। छुआछूत के व्यवहार से उनकी दशा और भी खराब हो गई।

परंपरागत वर्णव्यवस्था के अंतर्गत चार वर्ण आते हैं: ब्राह्मण (पुजारी और शिक्षित वर्ग), क्षत्रिय (योद्धा और शासक वर्ग), वैश्य (व्यापारी एवं वणिक वर्ग) और शूद्र (जो तुच्छ और प्रदूषण युक्त कार्य करते थे)।

यहाँ हमें यह समझ लेना चाहिए कि वर्ण व्यवस्था, जातीय वास्तविकता के बजाए ज्यादा सैद्धांतिक है। वास्तव में, चार ही जातियां नहीं बल्कि हजारों जातियां एवं उपजातियां हैं, जिन पर जाति व्यवस्था आधारित है। अधिकांश जातियों का वर्गीकरण वर्ण पर आधारित किया जा सकता है। हालांकि ऐसा करना सामाजिक संरचना के अंतिम छोर पर आसान होता है, न कि मध्य में। दूसरे शब्दों में, वर्ण व्यवस्था जाति से संबंधित है।

जाति एक स्थानीय समूह होता है, जो किसी व्यवसाय विशेष से पारम्परिक रूप से जुड़ा होता है। जन्म का सिद्धांत जातिगत समुदायों में सदस्यता का एकमात्र आधार है अर्थात व्यवसाय का चुनाव स्वतंत्र न होकर किसी जाति में जन्म लेने के आधार पर निर्धारित होता है। इसके अलावा इन जातिगत समुदायों के अपने खान-पान एवं विवाह संबंधी नियम होते हैं। समूह ही अपने सदस्यों के रहन-सहन के नियम बनाता है। जो इनके नियम नहीं मानते, उन्हें जाति-बिरादरी से निकाले जाने का भी अधिकार समुदाय के पास होता है। आधुनिक विचार धाराओं एवं संस्थाओं की दृष्टि से जातिगत पहचान मजबूत हुई है। स्वतंत्रता आन्दोलन से पूर्व, इसके दौरान और बाद में, यह राजनीतिक लामबन्दी का एक हथियार बनने के कारण ऐसा संभव हुआ। 19वीं शताब्दी के सामाजिक धार्मिक आंदोलन ने निम्न जातियों को उनकी खराब हालत के प्रति सचेष्ट किया और वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी हुए जिनसे उन्हें सदियों से वंचित रखा गया था। परिणामत: उनमें से अनेक अपनी दुर्दशा को भाग्य की देन मानने को तैयार नहीं थे। इस जागरूकता के फलस्वरूप शासन में लोकतांत्रिक सिद्धांतों का लागू होना, दल केन्द्रित राजनीति का उदय तथा ब्रिटिश शासकों द्वारा मुसलमानों सहित पिछड़ी और वंचित जातियों को बढ़ते राष्ट्रीय आंदोलन का ह्रास करने के लिए लामबंद करने के प्रयास ने जातियों के राजनीतिकरण का आधार तैयार किया। भारत की स्वतंत्रता के समय राजनीति के कारण ये पिछड़ी जातियां एक ताकत बन चुकी थीं। उनकी मांगे एवं हित अधिक दिनों तक टाले नहीं जा सकते थे। उसी समय राष्ट्रवादी नेताओं ने भी उनकी दशा सुधारने का बीड़ा उठाया। उपर्युक्त के संदर्भ में, संविधान निर्माताओं ने भी सकारात्मक रवैया अपनाते हुए इन्हें समाज में दूसरे के समान स्थान दिलाने का प्रयास किया। उन्होंने समझा कि राज्य की सहायता के बिना उनके ऐतिहासिक पिछड़ेपन को दूर नहीं किया जा सकता। इसलिए संविधान में आरक्षण की नीति लाई गई। पिछड़े वर्गों के अंतर्गत निम्न तीन वर्ग आते हैं– अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ी जातियां (ओबीसी)

पाठगत प्रश्न 22.2

रिक्त स्थान भरिए –

(क) .... भारतीय सामाजिक ढांचे के आधार हैं।

(ख) जाति व्यवस्था में, जातियाँ .... के रूप में विभाजित हैं।

(ग) जाति व्यवस्था .... के रूप में भी जानी जाती है। इसका आधार .... श्रम विभाजन है।

(घ) जाति व्यवस्था में व्यवसाय का चयन .... नहीं था, लेकिन इसके निर्धारण का आधार प्रत्येक का .... था।

22.4 राजनीति में जाति

स्वतंत्रता के बाद जाति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाना शुरू किया। राजनीति में इसकी भूमिका अधिक बढ़ गई। सच्चाई यह है कि आसानी से पहचान में आने वाले सामाजिक समूह के रूप में इसकी स्थिति ने राजनीतिक दलों को इनके वोट और समर्थन प्राप्त करने के लिए जातियों को राजनीतिक लामबन्दी का विषय बना दिया। स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में जाति के मुद्दे को दो कारकों से विशेष ध्यान

में लाया गया है। ये हैं-(1) सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का लागू होना (2) पिछड़ी जातियों के पक्ष में सुरक्षात्मक आरक्षण के संवैधानिक प्रावधान। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार से जनसंख्या के एक बड़े वर्ग को चुनावी रजानीति में प्रवेश मिला, जिसे अब तक संपत्ति की योग्यता के आधार पर बाहर रखा गया था। इससे राजनीतिक दलों के लिए वोटों की लामबंदी का काम काफी कठिन हो गया। परन्तु यह कठिन काम तब आसान हो गया जब राजनीतिक दल वोट प्राप्त करने के लिए जातियों पर निर्भर होने लगे। इस प्रक्रिया से प्रत्येक चुनाव के साथ जातियों की चुनाव में भागीदारी मजबूत होती गई।

चुनावी राजनीति के विस्तृत क्षेत्र के साथ सुरक्षात्मक भेदभाव के संवैधानिक प्रावधानों ने जातियों को राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का आधार प्रदान किया।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि सुरक्षात्मक भेदभाव तीन प्रकार के वर्गों के लिए था। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़ी जातियों। इन तीन वर्गों में अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां आसानी से पहचानी जा सकती थीं और उनके लिए आरक्षण की आवश्यकता और इच्छा पर अधिकांशतः सर्वसम्मति थी परंतु अन्य पिछड़ी जातियों का मामला इनसे अलग है।

दूसरे प्रकार की जातीय राजनीति में ऐसे सामाजिक और राजनीतिक दल आते हैं जो केवल जातीय आधार पर अन्य पिछड़ी जातियों को आरक्षण देने के पक्ष अथवा विरुद्ध लामबंदी का काम करते हैं। राजनीति में जातीय भागीदारी का अनुमान केवल इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि कुल जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत अन्य पिछड़ी जातियों से संबंध रखता है। पहले प्रकार की जातीय राजनीति राज्य सरकार की आरक्षण नीति को प्रभावित करने का प्रयास करती है तो दूसरे प्रकार की जातीय राजनीति का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार की आरक्षण नीति का विरोध करना है।

इस प्रकार आरक्षण के मुद्दे ने जातियों को राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने को उपजाऊ भूमि प्रदान की। नीतिनिर्देशक सिद्धांतों के अध्याय में अनुच्छेद 38 और 46 के अनुसार राज्य का यह कर्तव्य है कि वह जनसाधारण के कल्याण का सामान्य एवं पिछड़ी जातियों के कल्याण का विशेष ध्यान रखे। अनुच्छेद 38 कहता है– 1) राज्य को लोगों के कल्याण हेतु ऐसी सामाजिक व्यवस्था को प्रभावशाली ढंग से तैयार एवं प्राप्त करनी चाहिए जिसमें राष्ट्रीय जीवन के सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थानों में न्याय हो। 2) राज्य को विशेष रूप से न केवल लोगों के बीच अपितु विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों तथा भिन्न-भिन्न व्यवसाय में जुटे लोगों के समूहों के बीच आय में असमानता को कम करने, प्रतिष्ठा, सुविधाओं तथा अवसरों की असमानता को समाप्त करने के प्रयास करने चाहिए।

अनुच्छेद 46 के अनुसार राज्य लोगों के कमजोर वर्गों और विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को पूरे ध्यान से प्रोत्साहित करेगा तथा उन्हें सभी प्रकार के शोषण तथा अन्याय से बचाएगा।

आरक्षण की नीति संरक्षणात्मक भेदभाव के सिद्धांत पर आधारित है। संविधान निर्माताओं ने पिछड़ी जातियों के लिए संरक्षणात्मक भेदभाव को आवश्यक समझा, क्योंकि केवल अवसरों की समानता से पिछड़ी जाति के लोगों को समाज के अन्य लोगों के बराबर नहीं लाया जा सकता। परिस्थितियों की समानता के बिना अवसरों की समानता का परिणाम समानता लाने के बजाए असमानता को बढ़ाना होगा। यह गौर करने योग्य है कि संरक्षणात्मक भेदभाव समता के अधिकार का अपवाद न होकर उसका एक अभिन्न अंग है।

22.5 आरक्षण नीति

22.5.1 मूल आधार

पिछड़े वर्गों के पिछड़ेपन को देखते हुए संविधान में उनके उत्थान के लिए कुछ विशेष प्रावधान किए गए हैं। विशेष प्रावधान संरक्षणात्मक भेदभाव के रूप में हैं। आरक्षण की नीति एक संरक्षणात्मक विभेदीकरण है। आरक्षण नीति एवं इसके संवैधानिक संरक्षात्मक प्रावधान जानने से पहले आइए, पिछड़ी जातियों के लिए संवैधानिक प्रावधानों को जानें। नीति निर्देशक सिद्धांत के अध्याय के अंतर्गत धारा 38 और 46 में कहा गया है कि राज्य का यह कर्तव्य है कि वह जन साधारण के सामान्य और पिछड़ी जातियों के लिए विशेष कल्याण का ध्यान रखे। धारा 38 के अनुसार - (1) राज्य को चाहिए कि वह जनता की भलाई एवं कल्याण के लिए उसके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर को राष्ट्रीय स्तर पर ऊँचा उठाने के लिए प्रयास करे। (2) राज्य विशेष रूप से आर्थिक स्तर की असमानता को कम करने का प्रयास करे। साथ ही आर्थिक असमानता को दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले, विपरीत परिस्थितियों में रहने वाले लोगों के लिए कम किया जा सके।

धारा 46 के अनुसार '' राज्य का दायित्व है कि वह गरीब तबके के लोगों को शैक्षिक, आर्थिक स्तर पर जागरूकता लाकर उनका संवर्धन करेगा। राज्य विशेषत: अनुसूचित जाति एवं जनजातियों को शोषण से मुक्त करके नैयायिक संरक्षण प्रदान करेगा।''

आरक्षण की नीति का मुख्य आधार संरक्षात्मक पृथक्करण से है। यह पृथक्करण पिछड़ी जातियों के पक्ष में है। क्योंकि संविधान निर्माताओं को ऐसा लगा था कि बिना इन्हें ऊपर उठाए समतामूलक समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता। समानता में संवर्धन के बजाय समानता के अवसर उपलब्ध कराना है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि संरक्षात्मक पृथक्करण के प्रावधान के अपवाद नहीं हैं। लेकिन समानता के अधिकार में ही अनुसूय हैं।

22.5.2 अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए आरक्षण

संविधान ने पिछड़ी जातियों की तीन तरह से पहचान की है। इस अनुभाग में हम अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए संरक्षात्मक प्रावधानों की चर्चा करेंगे। संविधान ने अनुसूचित एवं अनुसूचित जनजातियों के बारे में तीन तरह के प्रावधान सुनिश्चित किए हैं---(1) सार्वजनिक एवं सरकारी सेवाओं में नौकरियों के लिए आरक्षण (2) शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण और (3) विधायी प्रतिनिधित्व में आरक्षण धारा 16 (अ) 320 (4) और 333 के अनुसार 15 प्रतिशत और 7.5 प्रतिशत नौकरियों में आरक्षण सभी प्रकार की सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए होगा। धारा 35 में यह व्यवस्था है कि प्रशासनिक स्तर पर भी यह आरक्षण सुनिश्चित होगा।

धारा 15(4) शिक्षण संस्थानों की सीटों से संबद्ध है। इस धारा के अनुसार राज्य को धारा 15 या धारा 29 के उपवध में किसी तरह का संशोधन करके सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के शैक्षिक रूप से पिछड़े या अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए कुछ अधिक करने का प्रावधान है। जैसा कि संघ एवं राज्य सरकार ने पहले से ही उन शैक्षिक संस्थाओं – जो जनता के धन से संचालित हैं, वहां 25 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था कर रखी है। इसलिए उनकी योग्यता में भी शिथिलता रखी गई है। इससे उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अवसर प्राप्त हो सकेंगे। धारा 330 और 332 के अंतर्गत लोक सभा एवं विधान सभा में सीटों का आरक्षण है। लोक सभा में कुल 78 सीटें अनुसूचित जातियों के लिए तथा 38 सीटें अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित हैं। राज्यों की विधान सभा सीटों में कुल 540 अनुसूचित जातियों के लिए तथा 282 सीटें अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित हैं। इसके अलावा पंचायती राज संस्थाओं के लिए भी इसी प्रकार सीटें आरक्षित हैं।

टिप्पणी

22.5.3 अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण

जैसा कि हमने पहले पढ़ा है कि अन्य पिछड़ी जातियों की पहचान करने तथा सुनिश्चित करने का काम केन्द्र तथा राज्य सरकारों पर छोड़ दिया था।

ऐसे कई राज्यों में, जहाँ पिछड़े वर्गों का आंदोलन मजबूत था जैसे तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, गुजरात, बिहार इत्यादि में राज्य सरकारों ने लोक सेवाओं के सभी स्तरों पर नौकरियों को तथा शिक्षण संस्थाओं में सीटों को आरक्षित कर दिया है।

केन्द्र सरकार ने केन्द्रीय सेवाओं में आरक्षण प्रदान करने में अपेक्षाकृत अधिक लम्बा समय लिया। केन्द्रीय सरकार ने 1953 में अनुच्छेद 340 के अंतर्गत केलकर आयोग नियुक्त किया था। आयोग ने 1956 में अपनी रिपोर्ट सौंपी परंतु केन्द्रीय सरकार ने इसकी सिफारिशों को लागू नहीं किया। दूसरा आयोग जनता पार्टी की सरकार द्वारा 1978 में नियुक्त किया गया। इस आयोग को मण्डल आयोग कहा गया जिसने अपनी रिपोर्ट 1982 में सरकार को सौंप दी। इसने 3943 जातियों की पिछड़ी जाति के रूप में पहचान की तथा सिफारिश की कि सभी सरकारी और अर्द्ध सरकारी नौकरियों में तथा शिक्षण संस्थाओं में इन जातियों को 27 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया जाए।

13 अगस्त 1990 को वी. पी. सिंह की सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशों के अनुरूप एक कार्यालयी ज्ञापन जारी कर अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण लागू कर दिया। इसके तुरंत बाद बड़ी मात्रा में विरोध प्रदर्शन हुए। सर्वोच्च न्यायालय में याचिकाएं दाखिल की गई तथा उच्च न्यायालयों ने इस कार्रवाई पर प्रश्न उठाए। सर्वोच्च न्यायालय ने इस विषय पर नवम्बर 1992 में सुनवाई की तथा केन्द्रीय सरकार को इस शर्त पर अन्य पिछड़ी जातियों को 27 प्रतिशत आरक्षण देने की अनुमति दी कि अन्य पिछड़ी जातियों की क्रीमी लेयर को इस आरक्षण से बाहर रखा जाए। केन्द्रीय सरकार द्वारा क्रीमी लेयर की पहचान करने के लिए रामानंद प्रसाद आयोग का गठन किया गया। इसका काम पूरा होने के बाद सरकार ने 13 अगस्त 1990 के आदेश को सितम्बर 1993 से लागू किया।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि केन्द्रीय सरकार ने अन्य पिछड़ी जातियों को आरक्षण का लाभ देने के लिए 40 वर्ष का समय लिया। इतना ही समय सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की पहचान के लिए जाति को एक सही आधार स्वीकार करने में लिया गया। हमें यहां यह ध्यान भी रखना होगा कि अन्य पिछड़ी जातियों को आरक्षण का लाभ केवल सरकारी नौकरियों में ही दिया गया है और उनके लिए लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं में कोई स्थान आरक्षित नहीं किया गया है जैसा कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए किया गया है।

22.5.4 महिलाओं के लिए आरक्षण का महत्व

महिलाएं भारत की जनसंख्या का लगभग आधा भाग हैं। लेकिन भारत में अशिक्षा, गरीबी और पिछड़े सामाजिक मूल्यों के कारण महिलाओं की स्थिति सोचनीय है। प्रचलित परिस्थितियों के दृष्टिगत महिलाओं को घर की चारदीवारी से बाहर निकाल कर उन्नति के रास्ते पर लाने के लिए महिलाओं के लिए आरक्षण शुरू किया गया। भारतीय लोकतंत्र में प्रत्येक प्रतिनिधिक संस्था तथा राज्य की प्रशासनिक सेवाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण के लिए बहस जारी है। पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत महिलाओं के लिए पंचायत, ब्लाक एवं जिला स्तर पर सीटों को आरक्षित कर दिया गया है। कुछ राजनीतिक दल राज्य विधान सभाओं तथा संसदीय चुनावों में 30 प्रतिशत टिकटों पर महिला प्रत्याशियों को चुनाव लड़वाने की बहस चला रहे हैं परंतु महिला आरक्षण विधेयक अभी तक संसद में लटका पड़ा है।

पाठगत प्रश्न 22.3

(क) संविधान में अनुसूचित जातियों के लिए .... स्थान एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए ....स्थान आरक्षित हैं।

(ख) संविधान अन्य पिछड़े वर्गों की पहचान नहीं करता है। (सत्य/असत्य)

(ग) अन्य पिछड़ी जातियों से संबद्ध आयोग, जिसने उसके लिए अपनी संस्तुतियां प्रस्तुत की हैं, उनका नाम है–

(क) सरकारिया आयोग

(इ) मंडल आयोग

(ब) रामानंद प्रसाद समिति

(घ) उच्चतम न्यायालय के अनुसार अन्य पिछड़ी जातियों के अन्तर्गत .... को आरक्षण की सुविधा प्राप्त नहीं है।

आपने क्या सीखा

संप्रदायवाद ने हिंदू और मुसलमानों को दो वर्गों में विभाजित किया है और साम्प्रदायिक समरसता को खतरा पहुंचाया है। अंग्रेजों ने अपने औपनिवेशिक शासन में तथा आत्मकेन्द्रित राजनीतिक वर्ग ने धार्मिक अतिवाद को बढ़ावा दिया। परिणामत: पूरे देश में सांप्रदायिक हिंसा देखने को मिली। इसमें अपराधी तत्वों ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता और बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता देश की आजादी और आर्थिक प्रगति में बाधक बने।

पिछड़ेपन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पिछड़ी जातियों को समाज के अन्य वर्गों के समान लाने के लिए संविधान ने संरक्षणात्मक भेदभाव का प्रावधान किया है। संरक्षणात्मक भेदभाव समता के अधिकार का अपवाद नहीं है अपितु उसका एक अभिन्न अंग है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को राज्य तथा केन्द्रीय सरकार से आरक्षण का लाभ संविधान लागू होने के साथ मिल गया परंतु अन्य पिछड़ी जातियों को यह लाभ बहुत बाद में 1993 को मिला। अन्य पिछड़ी जातियों के लिए विधायी प्रतिनिधित्व में आरक्षण नहीं दिया गया है।

पाठगत प्रश्न

(1) संप्रदायवाद क्या है?

(2) भारतीय समाज में जाति की भूमिका को संक्षेप में वर्णन कीजिए।

(3) भारत में आरक्षण नीति की चर्चा कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

22.1

1. (क)
2. असहिष्णुता और अतिवाद
3. अपराधी तत्व
4. असत्य

22.2

(क) जातियां

(ख) वंशानुगत

(ग) वर्ण व्यवस्था, सामाजिक

(घ) मुक्त, जाति

22.3

(क) 15 और 7.5

(ख) सत्य

(ग) मण्डल आयोग

(घ) क्रीमी लेयर

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1) खण्ड 22.1 देखें

2) खण्ड 22.3 देखें

3) खण्ड 22.5 देखें